धर्म और विज्ञान का बन्दर मुकदमा

सुशील जोशी

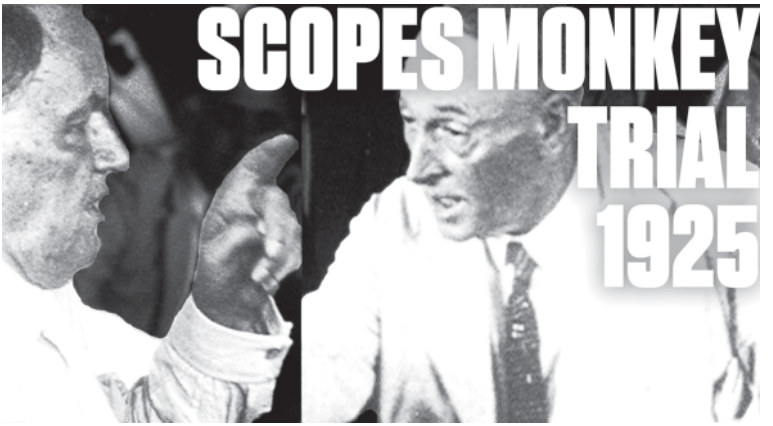

अक्सर हम एक ही तरह के मुद्दों से बार-बार लगातार जूझते रहते हैं। कभी लोग बदल जाते हैं तो कभी स्थान, कभी काल। मसलन, जो किस्सा मैं कहने जा रहा हूँ, वह 1925 के अमरीका का है। स्थान है एक छोटा कस्बा डेटन, टेनेसी प्रान्त। कस्बा भी क्या, इसे गाँव कहना ही बेहतर होगा - कुल आबादी 1800 होगी। मगर यहाँ की अदालत में एक ज़ोरदार मुकदमा लड़ा जाने वाला है जो आगे चलकर बन्दर मुकदमे के नाम से विख्यात होगा और इसे बीसवीं सदी के सबसे महत्वपूर्ण मुकदमों में गिना जाएगा। मामला सिर्फ इतना है कि एक 24 वर्षीय स्कूल शिक्षक जॉन स्कोप्स ने अपनी कक्षा में जैव-विकास का डार्विन सिद्धान्त पढ़ाया है और ऐसा करना टेनेसी प्रान्त के कानून के खिलाफ है। स्पष्ट है कि शिक्षा को हर देश-काल में विचारधारा फैलाने का एक अहम साधन समझा गया है। मगर कहानी आगे बढ़ाने से पहले थोड़ी पृष्ठभूमि देना उचित होगा।

1920 में अमरीका में एक लहर-सी चली थी। इस लहर पर सवार थे

बुनियादपरस्त लोग जो यह मानते थे कि बाइबल का अक्षरशः पालन होना चाहिए और डार्विन का जैव-विकास सिद्धान्त बाइबल के खिलाफ है। लिहाज़ा, इसे स्कूलों में नहीं पढ़ाया जाना चाहिए। उस दौरान कई प्रान्तों में इस आशय के विधेयक पारित हुए। डार्विन को स्कूल से बाहर कर दिया गया। टेनेसी ऐसे विधेयक पारित करने वाले प्रान्तों में अग्रणी था। यहाँ कानून निर्माता बटलर ने जैव-विकास निषेध कानून बनाया था और इसे 'बटलर कानून' कहा जाता था। इस बुनियादपरस्त लहर को देखते हुए अमरीकी नागरिक आज़ादी संगठन ए.सी.एल.यू. ने इसे अभिव्यक्ति की आज़ादी पर एक खतरा मानते हुए घोषणा की कि यदि कोई शिक्षक इस कानून का उल्लंघन करेगा तो संगठन उसे कानूनी सहायता प्रदान करेगा। इससे प्रेरित होकर डेटन के कुछ उदारवादी लोगों ने सोचा कि यदि किसी तरह यह उल्लंघन उनके कस्बे में हो जाए तो बाकी जो कुछ हो, कस्बा मशहूर हो जाएगा। उन्होंने एक शिक्षक जॉन स्कोप्स से बात की। जॉन स्कोप्स ने उन्हें बताया कि जैव-विकास और डार्विन की बात किए बगैर जीव विज्ञान पढ़ाया ही नहीं जा सकता। उसने तो यहाँ तक कहा कि सभी शिक्षक अपनी कक्षा में *ए सिविक बायोलॉजी* नामक किताब पढ़ाते हैं और उसमें डार्विन का सिद्धान्त समझाया गया है। स्कोप्स से पूछा गया कि क्या वह यह बात अदालत में स्वीकार करेगा, जिस पर उसने हामी भर दी। फिर क्या था, अगले दिन ही एफ.आई.आर. दर्ज की गई और उसकी गिरफ्तारी हुई और उस पर आरोप लगाया गया कि उसने जैव-विकास पढ़ाकर बटलर कानून का उल्लंघन किया है।

चित्र-1: मुकदमे के सातवें दिन अत्यधिक गर्मी के कारण कोर्ट की कार्यवाही बाहर खुले में की गई।

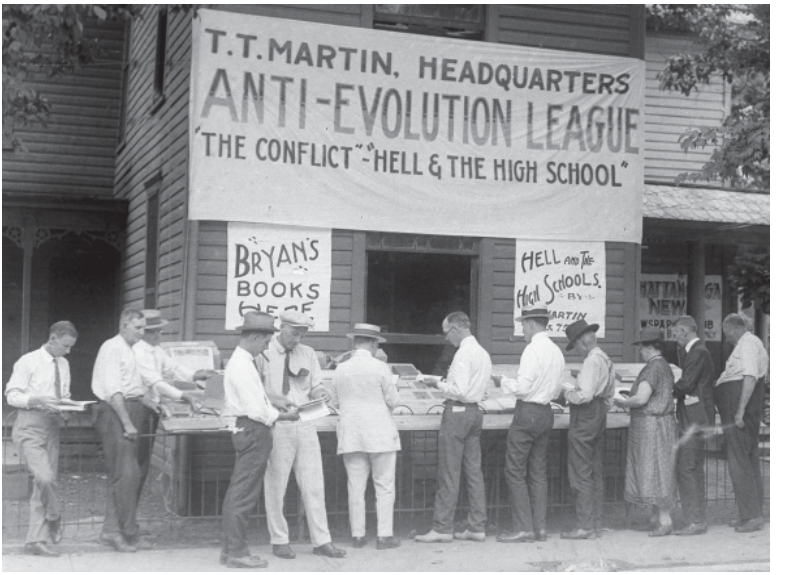

इस बात की सूचना ए.सी.एल.यू. को दी गई और उन्होंने अपनी ओर से एक वरिष्ठ वकील क्लेरेंस डैरो को रवाना कर दिया। वैसे डेटन के उक्त उदारवादी समूह की तमन्ना थी कि प्रसिद्ध विज्ञान कथा लेखक एच.जी. वेल्स इस मुकदमे के लिए आते। दूसरी ओर सरकार की ओर से पैरवी करने को विलियम जेनिंग्स ब्रायन आ धमके। ब्रायन वकील कम, राजनीतिज्ञ ज़्यादा थे। वे तीन बार राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार रह चुके थे। इससे पहले कई वर्षों से वे जैव-विकास के खिलाफ अभियान चलाते रहे थे और उन्हें लगा था कि डेटन का मुकदमा अपने अभियान को आगे बढ़ाने का अच्छा अवसर प्रदान करेगा। जज थे जॉन रॉल्स्टन। इस मुकदमे पर पूरे देश की निगाहें थीं। तमाम मीडिया डेटन में इकट्ठा हो गया। मुकदमे का आँखों देखा हाल रेडियो पर सुनाने की व्यवस्था थी। पूरे डेटन में जैसे मेला लग गया। तमाम पादरी लोग गली-गली में प्रवचन करने लगे, तरह-तरह की दुकानें लग गईं, यहाँ तक कि नुक्कड़ सर्कस भी धन्धा करने आ पहुँचा।

मुकदमे की शुरुआत

बहरहाल, 10 जुलाई 1925 को सुबह सुनवाई शुरू हुई। सुबह से ही काउंटी की अदालत खचाखच भरी हुई थी। ज्यूरी के चयन के साथ ही सुनवाई शुरू हुई। सबसे पहले *बुक ऑफ जिनेसिस* को बतौर प्रमाण प्रस्तुत

किया गया। फिर स्कूल के बच्चों की गवाहियाँ हुईं। सब बच्चों ने कहा कि उनके शिक्षक स्कोप्स ने उन्हें पढ़ाया था कि मानव का विकास एक-कोशीय जन्तुओं से हुआ है। सरकारी वकील के हिसाब से मुकदमा बस इतना ही था।

दूसरी ओर बचाव पक्ष इस मुकदमे के ज़रिए कुछ प्रजातांत्रिक सिद्धान्त प्रतिपादित करना चाहता था। वह चाहता था कि जैव-विकास की प्रामाणिकता पर बहस हो, वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत हो, अभिव्यक्ति की आज़ादी पर बहस हो और बटलर कानून की असंवैधानिकता साबित हो। बचाव पक्ष का मुख्य तर्क यह था कि बाइबल की शाब्दिक व्याख्या से काम नहीं चलेगा, जो कि बुनियादपरस्तों की खासियत होती है, बाइबल में सब कुछ है। सत्य वही है जो बाइबल में है।

अदालत में प्रतिदिन की कार्यवाही प्रार्थना से शुरू होती थी। इस पर बचाव पक्ष के वकील क्लेरेंस डैरो ने आपत्ति की, जिसे जज रॉल्स्टन ने खारिज कर दिया। अदालत में एक बैनर लगाया गया था जिस पर लिखा था - बाइबल पढ़ो। डैरो ने इस पर भी आपत्ति की क्योंकि यह उसके मुवक्किल के विरुद्ध था। इसे ज़रूर जज ने स्वीकार कर लिया। मगर बचाव पक्ष को सबसे बड़ा झटका तो अभी लगना था। बचाव पक्ष ने अपनी रणनीति में कई वैज्ञानिकों, जीव वैज्ञानिकों, पुरा-जीव वैज्ञानिकों, भू-वैज्ञानिकों वगैरह की गवाही की योजना बनाई थी। पहले तो जज रॉल्स्टन ने इसकी अनुमति दी मगर शर्त यह रखी कि

जीव वैज्ञानिक की कुछ दलीलें सुनने के बाद ही वे तय करेंगे कि इसकी ज़रूरत है या नहीं। दूसरी शर्त उन्होंने यह रखी कि गवाही के वक्त ज्यूरी उपस्थित नहीं रहेगी क्योंकि उनकी मानसिकता पर इसका असर पड़ सकता है।

विशेषज्ञ गवाही नामंज़ूर

तो ज्यूरी की अनुपस्थिति में जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के जीव वैज्ञानिक मैनार्ड मैटकाफ की गवाही शुरू हुई। गवाही में उन्होंने बताया कि कैसे धरती पर विभिन्न जीव धीरे-धीरे विकसित हुए हैं और इस सिद्धान्त के पक्ष में किस तरह के सबूत प्राप्त हुए हैं वगैरह। कुछ समय झेलने के बाद जज रॉल्स्टन ने आदेश दिया कि इस तरह की गवाही की अनुमति नहीं दी जा सकती। ज्यूरी ने यह गवाही सुनी ही नहीं। सरकारी पक्ष के एक वकील ने तो यहाँ तक कहा कि इस मुकदमे से विशेषज्ञों का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो ज्यूरी द्वारा तय होना है, इसे विशेषज्ञों का मुकदमा कैसे बनाया जा सकता है। तो बचाव पक्ष की यह रणनीति नाकाम हो गई कि वे इस मुकदमे के माध्यम से इस मुद्दे पर एक बहस चला पाएँगे। इसके बाद लगभग तय हो गया कि फैसला क्या होना है। वैज्ञानिकों की गवाही को नकारकर अदालत ने स्पष्ट कर दिया था कि इतिहास व विज्ञान के सिद्धान्त क्या हैं, इसका फैसला इतिहासकारों व वैज्ञानिकों द्वारा नहीं बल्कि धर्माचार्यों द्वारा किया जाएगा। दुनिया को समझने के कौन-से सिद्धान्त मान्य होंगे व बच्चों को पढ़ाए जाएँगे, इसका फैसला वैज्ञानिक नहीं बल्कि धर्मग्रन्थों के विशेषज्ञ करेंगे।

दरअसल, जज और सरकारी वकीलों का मानना था कि इस मुद्दे में इस बात का कोई महत्व नहीं है कि सच्चाई क्या है, जैव-विकास का सिद्धान्त सही है या नहीं, डार्विन के सिद्धान्त के पक्ष में प्रमाण हैं या नहीं। उनके विचार में मुद्दा मात्र यह था कि उस शिक्षक ने जैव-विकास या डार्विन का सिद्धान्त पढ़ाया था या नहीं। यदि उसने ऐसा किया तो वह अपराधी है और उसे सज़ा मिलनी चाहिए। दूसरी ओर बचाव पक्ष चाहता था कि अदालत में यह साबित हो कि उक्त कानून असंवैधानिक है, अभिव्यक्ति की आज़ादी के खिलाफ है और इस अर्थ में कट्टरतावादी है कि वह बाइबल की शाब्दिक व्याख्या को बढ़ावा देता है।

सरकारी वकील बना गवाह

जब विशेषज्ञों की गवाही को अप्रासंगिक, निरर्थक और बेमतलब कहकर अस्वीकार कर दिया गया तो बचाव पक्ष ने एक नाटकीय रणनीति अपनाई। उन्होंने सरकारी वकील को ही अपना गवाह बनाने की पेशकश की। दरअसल, विलियम जेनिंग्स ब्रायन स्वयं को बाइबल विशेषज्ञ भी मानते थे। उनको गवाह बनाने का मकसद यह था कि अदालत में यह दिखाया

जा सके कि बाइबल की शाब्दिक व्याख्या करना अनुचित है और स्वयं सरकारी वकील भी ऐसा नहीं करेंगे। अदालत ने इसकी अनुमति दे दी। सरकारी वकील ब्रायन ने भी इस मौके को हाथ से नहीं जाने दिया और गवाह की कुर्सी पर जा बैठे।

अब मुकदमे का सबसे नाटकीय हिस्सा शुरू हुआ। डैरो ने पहले तो ब्रायन से पूछा कि क्या वे बाइबल के विशेषज्ञ हैं। जब ब्रायन ने हाँ कर दिया तो डैरो का अगला सवाल था कि क्या वे मानते हैं कि बाइबल की हर बात पर अक्षरशः विश्वास करना चाहिए। ब्रायन का जवाब था कि बाइबल में जैसा लिखा है, उसे मानना चाहिए। तब डैरो ने पूछा कि क्या व्हेल ने जोनाह को निगल लिया था, क्या जोशुआ ने सूरज को थाम लिया था, क्या हौवा आदम की पसली से बनी वगैरह। इस पर ब्रायन ने यही कहा कि बाइबल में जो लिखा है, उसे मानना चाहिए। मगर जब डैरो ने यह पूछा कि सृष्टि कितने समय में बनी तो ब्रायन थोड़ा विचलित हुए। सवाल यह था कि जब सूरज नहीं था तब दिन कितने घण्टे का है, यह कैसे पता चला। इस पर ब्रायन ने कहा कि वे 24 घण्टे के दिन नहीं थे, वह तो एक अवधि है। सम्भव है कि वह अवधि करोड़ों वर्षों की रही हो। यानी ब्रायन ने स्वीकार कर लिया कि बाइबल को अक्षरशः मानने की ज़रूरत नहीं है।

जो हज़ारों दर्शक ब्रायन के पक्ष में थे और जो उसकी हर बात पर तालियाँ पीट रहे थे, अब वे धीरे-धीरे उस पर हँसने लगे थे। जज ने कार्यवाही अगले दिन के लिए मुल्तवी कर दी।

अगले दिन जब अदालत शुरू हुई तो जज ने पहला काम यह किया कि ब्रायन की और गवाही की अनुमति नहीं दी और पिछले दिन की कार्यवाही को रिकॉर्ड से हटवा दिया। यानी सुनवाई पूरी हुई। अब दोनों पक्षों को अपना-अपना बयान देना था। ब्रायन यह बयान बहुत ध्यान से तैयार करके लाए थे। वे तो इस मुकदमे के ज़रिए अपनी राजनीति चमकाना चाहते थे। मगर बचाव पक्ष नहीं चाहता था कि ब्रायन को अपना भाषण देने का मौका मिले। अतः डैरो ने फौरन ज्यूरी से अनुरोध किया कि वे स्कोप्स को दोषी घोषित कर दें ताकि वे उच्च न्यायालय में अपील कर सकें। कारण यह था कि कानून की वैधानिकता पर बहस तो उच्च न्यायालय में ही हो सकती थी। जब बचाव पक्ष ने अपना बयान नहीं दिया तो नियमानुसार सरकारी पक्ष को भी बयान देने की अनुमति नहीं मिल सकती थी।

दोषी करार, फिर बरी

ज्यूरी ने स्कोप्स को दोषी करार दिया और जज रॉल्स्टन ने कानून के तहत न्यूनतम जुर्माना (100 डॉलर) उस पर लगाया। एक मायने में सरकारी पक्ष जीत गया। मगर देखा जाए तो आम लोगों के बीच स्कोप्स की ही जीत हुई थी। स्कोप्स ने कहा, "यॉर

ऑनर, मुझे लगता है कि मुझे एक अन्यायपूर्ण कानून का उल्लंघन करने की सज़ा मिली है। भविष्य में भी मैं हर सम्भव तरीके से इसका विरोध करता रहूँगा क्योंकि और कुछ भी करना शैक्षणिक स्वतंत्रता के मेरे विचारों का उल्लंघन होगा।"

बहरहाल, उच्च न्यायालय में अपील हुई। वहाँ कोई कानूनी बहस नहीं हुई। बटलर कानून की संवैधानिकता पर कोई बात तक नहीं हुई। उच्च न्यायालय ने तकनीकी आधार पर स्कोप्स को बरी कर दिया। उच्च न्यायालय का मत था कि नियमानुसार जुर्माना तय करने का काम ज्यूरी को करना चाहिए था, जज को नहीं। चूँकि निचली अदालत में जज ने जुर्माना तय किया था इसलिए मुकदमा खारिज किया जाता है। लिहाज़ा, डेटन में शुरू हुए मुकदमे से जैव-विकास-विरोधी कानून को हटवाने में कोई मदद नहीं मिली मगर एक फायदा ज़रूर हुआ कि अधिकांश प्रान्तों ने इन विधेयकों को लागू करने सम्बन्धी नियमादि नहीं बनाए। मात्र दो प्रान्तों, मिसीसिप्पी और अरकान्सास ने ही डार्विन सिद्धान्त पढ़ाने पर रोक लगाने सम्बन्धी नियम बनाए। मगर अन्य प्रान्तों में कानून यथावत रहा। पूरे चालीस साल बाद 1968 में अरकान्सास प्रान्त के ऐसे ही एक कानून को उच्चतम न्यायालय ने असंवैधानिक बताते हुए खारिज कर दिया। इसके बाद सारे प्रान्तों के ऐसे कानून हटे।

कई लोगों का मत है कि यह मुकदमा अदालत के साथ-साथ मीडिया में भी चला था। मुकदमा इतिहास के एक ऐसे मोड़ पर सामने आया जब लोग दुविधा में थे, परम्परा से चिपके रहें या आधुनिकता की ओर छलांग लगाएँ, मुकदमे के दौरान जैव-विकास बनाम धर्म प्रमुख मुद्दा रहा। मगर व्यक्तिगत अधिकार बनाम सामूहिक अधिकार, शैक्षिक सरोकार बनाम पालकों के सरोकार जैसे मुद्दे भी पृष्ठभूमि में थे। और सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा तो यह था कि स्कूल पर अधिकार किसका हो - जनता का या शिक्षकों का, मुद्दा यह भी था कि हमारे जीवन में धर्मग्रन्थों का क्या स्थान है। बुनियादपरस्त लोग कहेंगे कि धर्मग्रन्थों की बातों को अक्षरशः मानना चाहिए जबकि अधिकांश साधारण लोग मानते हैं कि इन्हें रूपक ही माना जा सकता है। यही बात बचाव पक्ष के वकील डैरो स्पष्ट करना चाहते थे। उन्होंने कहा भी कि विज्ञान चूँकि अपने ज्ञान की सीमाएँ जानता है इसलिए वह खोज जारी रखता है। दूसरी ओर, धर्म की बुनियादपरस्त व्याख्या यही है कि हम सब कुछ जानते हैं, अतः खोज की ज़रूरत नहीं है।

सुशील जोशीः *एकलव्य* द्वारा संचालित *स्रोत* फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

यह लेख *स्रोत* पत्रिका, अंक - अप्रैल 2003 से साभार।